# इकाई 11 उपनिवेशवाद, जाति-व्यवस्था और आदिवासी आंदोलन

इकाई की रूपरेखा


11.0 उद्देश्य
11.1 प्रस्तावना
11.2 उपनिवेशवाद और सांस्कृतिक सामाजिक क्षेत्रों में इसका प्रभाव
11.3 सुधार आंदोलन
11.3.1 जाति-विरोधी : कुछ विवरण
11.4 उपनिवेशवाद और अर्थतंत्र पर इसका प्रभाव
11.5 जाति-व्यवस्था और उपनिवेशवाद
11.5.1 ब्रिटिश न्यायिक एवं प्रशासनिक व्यवहारों का प्रभाव
11.5.2 आर्थिक परिवर्तनों का प्रभाव
11.5.3 उदारवादी दर्शन के प्रभावों के अधीन जाति-विरोधी आंदोलन
11.6 आदिवासी आंदोलन
11.7 सारांश
11.8 प्रश्नों के उत्तर


## 11.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन से आप :

- अंग्रेजी उपनिवेशवाद की स्थापना के बाद उभरे जाति-विरोधी आंदोलनों की प्रकृति की व्याख्या कर सकेंगे, और
- उपनिवेशकालीन भारत में आदिवासी आंदोलन के उद्भव एवं विकास का विवेचन कर पायेंगे।

## 11.1 प्रस्तावना

इस पाठ्यक्रम के खंड 1 में आप पढ़ चुके हैं कि अंग्रेजी उपनिवेशवाद ने भारत के सामाजिक-आर्थिक ढांचे, और इसके साथ निश्चय ही, राजनीतिक प्रशासनिक व्यवस्था में तेजी से परिवर्तन किए। दरअसल, राजनीति एवं प्रशासन संबंधी परिवर्तन, मुख्यतः एक समेकित राजनैतिक-प्रशासनिक इकाई के रूप में भारत का संघटन, नागरिक सेवा कार्यों, सेनाओं एवं न्यायपालिका इत्यादि का गठन देश की सामाजिक-आर्थिक संरचना में व्यापक परिवर्तन के लिए आवश्यक था। यह अपने आप में कोई अंत नहीं था, क्योंकि इन परिवर्तनों की शुरुआत उपनिवेशों से अतिरिक्त संपदा के दोहन तथा इसे इंग्लैंड भेजने के लिए की गई थी।

## 11.2 उपनिवेशवाद और सांस्कृतिक-समाजिक क्षेत्रों में इसका प्रभाव

विश्व पूंजीवादी व्यवस्था के साथ भारतीय अर्थतंत्र के जुड़ने के साथ ही सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन आने लगे। उपनिवेशवाद ने पश्चिमी विश्व में हो रहे व्यापक परिवर्तनों से भारत का संपर्क संभव बनाया और भारतीय बुद्धिजीवियों को जनवाद, लोक-संप्रभुता एवं हेतुवाद के मूलगामी एवं उदारवादी आदर्शों से परिचित कराया।

औद्योगिक क्रांति, विज्ञान एवं तकनीकी का क्षिप्र विकास, पश्चिम में 18वीं-19वीं सदी के दौरान हुए महान क्रांतिकारी उभारों से समूचे विश्व का परिदृश्य बदल रहा था– वह पहले जैसा अब नहीं बना रह सकता था। आधुनिक शिक्षा के प्रवर्तन के साथ उपरोक्त तथ्यों ने भारत के मध्यमवर्गीय तबकों पर जो गहरे प्रभाव छोड़े, उनके फलस्वरूप भारतीय समाज में प्रभावी पिछड़े एवं पतनशील सामाजिक-धार्मिक व्यवहारों को तीखे प्रश्नों एवं आलोचनात्मक मूल्यांकन के अधीन लाया गया।

उपनिवेशवाद भारत के सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश मुख्यतः परिवार एवं गोत्र मूलक संस्थाओं से बना था, जो धार्मिक एवं जातीय अस्थिरता से जनमानस को निश्चित रूप देते थे। सभी पारंपरिक प्रथाएं एक पीढ़ी से दूसरी को इन संस्थाओं के माध्यम से विरासत में मिलती थीं। आरंभ में, आधुनिक शिक्षा का सतही प्रभाव ही भारत पर पड़ा। उपनिवेशवादी राज्य के अधीन समुचित सांस्कृतिक स्रोतों और विचारधारात्मक अभिकरणों का अभाव देखते हुए अंततः अंग्रेजों ने, लार्ड मैकाले जैसे व्यक्तियों के नेतृत्व में, अपने प्रयासों को भारतवासियों का ऐसा समुदाय तैयार करने की दिशा में लगाया जो उपनिवेशवादी संस्कृति एवं विचारधारा के संवाहक हों– अपने रंगरूप में तो भारतीय, लेकिन रुचियों से अंग्रेजियत से प्रभावित।

ये विशेष स्थितियां जैसी भी रही हों, आधुनिक विचारों के प्रभावों के अधीन भारत में धार्मिक सुधार आंदोलनों की एक समूची शृंखला सामने आई।

**बोध प्रश्न 1**

**टिप्पणी** : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये गये रिक्त स्थान का प्रयोग करें।
2) अपने, उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से करें।

1) सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में अंग्रेजी उपनिवेशवाद के क्या प्रभाव थे?

.....

.....

.....

.....

## 11.3 सुधार आंदोलन

### 11.3.1 जाति विरोधी : कुछ विवरण

इन आंदोलनों ने "पारंपरिक संस्कृति के पिछड़े तत्वों के विरुद्ध संघर्ष" का रूप लिया, जिसका महत्वपूर्ण आयाम था जातिवाद का विरोध। ब्रह्म समाज तथा प्रार्थना समाज जैसे आंदोलनों ने जातिगत विभेद खत्म करने का समर्थन किया।

उदारवादी विचारों से प्रत्यक्ष प्रभावित, उन्नीसवीं सदी के आरंभ के सुधार आंदोलनों के क्रम में ही आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन जैसे धार्मिक सुधार आंदोलन उभरे। अपने धार्मिक संदेशों और अवधारणाओं की दृष्टि से भिन्न होते हुए भी इन आंदोलनों की धार भी जातिवाद विरोधी थी। आर्यसमाज को अपनी प्रेरणाएं वैदिक हिंदू धर्म से मिली थीं, इसने बहुदेववाद एवं मूर्ति पूजा को ठुकराया और व्यक्ति को व्यापकतर महत्व देने का प्रयास किया। आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानंद सरस्वती ने शूद्रों समेत सभी व्यक्तियों द्वारा वेद-पाठ को मान्यता दी। पारंपरिक हिंदू धर्म के अंतर्गत यह महत्वपूर्ण नई बात थी, क्योंकि पहले तो शूद्रों द्वारा धर्म ग्रंथों को छूना तक निंदनीय माना जाता था। दयानंद सरस्वती मानते थे कि अतीत में जाति प्रथा की उपयोगी भूमिका थी। लेकिन अपनी तत्संबंधी अवधारणा में उन्होंने अधिक लचीलेपन का परिचय दिया, इस बात पर बल देते हुए कि जन्म ही इसके निर्णय का एकमात्र आधार नहीं होना चाहिए। उनके अनुसार इसकी कसौटी बनने चाहिए गुण, कर्म और स्वभाव। इसलिए उन्होंने अस्पृश्यता को अमानवीय मानते हुए उसकी भर्त्सना की। दूसरी ओर रामकृष्ण मिशन ने वेदांतिक हिंदू धर्म का प्रचार किया और सार्वभौम बंधुत्व का समर्थन। एक साधारण ग्रामीण संत रामकृष्ण द्वारा शुरू किए गए इस पुनरुत्थानवादी आंदोलन को परवर्ती काल में स्वामी विवेकानंद ने आगे बढ़ाया। विवेकानंद जाति व्यवस्था को पूरी तरह त्यागने के पक्ष में नहीं थे, बल्कि उन्होंने इसकी रूढ़िवादिता पर प्रहार किया।

उन्होंने इसे जन्म आधारित व्यवस्था के स्थान पर कर्म/योग्यता-आधारित व्यवस्था का रूप देने का प्रयास किया। उन्होंने अस्पृश्यता के दृष्टिकोण/व्यवहार पर भरपूर चोट की।

## 11.4 उपनिवेशवाद और अर्थतंत्र पर इसका प्रभाव

यहां हम मुख्यत: कृषि अर्थतंत्र पर पड़े प्रभावों की चर्चा करेंगे। भारतीय अर्थतंत्र में अंग्रेज़ों द्वारा किए गए प्रमुख परिवर्तनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण थे, कृषि अर्थतंत्र में हुए दूरगामी परिवर्तन। भूराजस्व के रूप में अतिरिक्त मूल्य की प्राप्ति और भारतीय कृषि को ब्रिटिश अर्थतंत्र का उपांग बनाने के उद्देश्य से किए गये इन परिवर्तनों ने ग्रामीण क्षेत्रों का परिदृश्य ही बदल दिया। जैसा कि आप पहले पढ़ चुके हैं कि उपरोक्त उद्देश्य से ही औपनिवेशिक शासन ने दो प्रमुख काश्तकारी एवं भूराजस्व व्यवस्थाएं– ज़मींदारी तथा रैयतवाड़ी व्यवस्थाएं– लागू की, जिनके फलस्वरूप किसान जोतदारों की स्थिति और डांवाडोल हो गई। उनको बहुत अधिक लगान और अवैध शुल्क देना पड़ता था और अक्सर बाध्यकारी/जबिसा श्रम करना होता था।

ऊंची लगान दरों ने किसान जोतदारों को उतनी ही ऊंची ब्याज दरों पर ऋण लेने के लिए बाध्य कर दिया। किसानों को अक्सर अपनी संपत्ति बेच देनी पड़ती थी। बाढ़ और सूखे ने स्थिति को और भी उग्र बना दिया और उन्हें अब महाजनों की अधिकाधिक गिरफ्त में ला दिया, जिनको सरकार का भी समर्थन प्राप्त था। कृषि अर्थतंत्र को अधिकाधिक अपनी जकड़ में लेने के फलस्वरूप महाजन आपदग्रस्त किसानों का जमीन पर कब्जा करने में सफल हुए, जिनकी उत्तरोत्तर बढ़ती निर्धनता ग्रामीण जीवन की विशेषता बन गई थी।

इसके साथ अंग्रेजों ने भारतीय कृषि एवं जनजातीय अर्थतंत्र को निरंतर फैलते अंग्रेज औपनिवेशिक बाजार के अंतर्गत समेट लेने का सचेत प्रयास किया। इस उद्देश्य से भारतीय कृषि को ब्रिटिश पूंजी की आवश्यकताओं में ढालने के लिए बाध्य कर दिया गया। इसलिए कपास, नील, गन्ना, चाय और काफी जैसी नकदी फसलों के व्यापक उत्पादन पर बल दिया गया। भारतीय एवं विदेशी बाज़ारों में निर्यात को लक्षित फसलों का उत्पादन वह मुख्य कारक था, जिसने आरंभिक 19वीं सदी में एक अधिक समरूप कृषि समाज की रचना की। यह नहीं कि आदिवासी और बंजारा जन समुदायों को एक स्थान पर बसाया और निर्यात-योग्य उत्पादन के अनुशासन के अधीन लाया जा रहा था, बल्कि स्वदेशी शासन के अंतर्गत कृषि क्षेत्रीय बस्तियों में पाये जाने वाले जन समुदाय के बीच की पद स्तर एवं प्रकार्य श्रेणियां भी खत्म हो रही थीं और धन एवं भूस्वामित्व के सरल विभेद उनका स्थान ले रहे थे।

ब्रिटिश नीतियों द्वारा कृषि व्यवस्था में लाये गये अनेकानेक परिवर्तनों में सामाजिक संबंधों का परिवर्तन भी आता था।

आदिवासी अर्थतंत्रों के बाज़ार प्रभावों में अंतर्गत आ जाने के बाद जंगली इलाकों में पूंजी और उपभोग के किन्हीं रूपों का क्रमिक प्रवेश अत्यंत महत्वपूर्ण परिवर्तन था। कंपनी और भारत की पराधीनता के लिए जिम्मेदार महाजनों के बीच साझेदारी अब आंतरिक सीमाओं पर अधिकार की दिशा में बढ़ने लगी। मैदानी क्षेत्रों में महाजन मध्य भारतीय आदिवासी क्षेत्रों में घुसने लगे और जमींदारी और ऋणग्रस्तता की प्रक्रिया को पुष्ट किया, जो स्थानीय आदिवासी व्यवस्था के आर्थिक ढांचे से बिल्कुल भिन्न थी। 18वीं सदी काल तक भी चारवाहों और बंजारों को व्यापक अर्थव्यवस्थाओं का अस्तित्व पाया जा सकता था जिनका स्वरूप उन्नीसवीं सदी के मध्य तक बिल्कुल बदल गया। अंग्रेजों ने प्रत्येक स्थान पर गूजरों, भाटियों, रंजर राजपूतों और मेवालियों को बसाने और अनुशासन के अधीन लाने का प्रयास किया जो संरक्षण शुल्क उगाहते चलते थे। परती जमीन के आंकलन और अदालतों द्वारा लागू किये जाने वाले अधिक कड़े संपत्ति अधिकारों ने बंजारों की गतिशीलता सीमित कर दी। उदाहरण के लिये ढक्कन क्षेत्र की अधिकांश चरवाहा जातियां 1870 के पहले अधीनस्थ कृषि संबंधित/खेतिहर जातियां बन चुकी थीं। चरागाहों और कृषि क्षेत्रों के अर्थतंत्र में हुए परिवर्तनों ने, यद्यपि वे अधिकाधिक असंतोष और विद्रोहों का कारण भी बने, जैसा आप बाद में देखेंगे, जाति-व्यवस्था में भी परिवर्तन किए।

बोध प्रश्न 2

टिप्पणी : 1) निम्न रिक्त स्थान का प्रयोग अपने उत्तर के लिए करें।

2) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तर के आधार पर करें।

1) भारतीय अर्थतंत्र पर अंग्रेजी शासन के प्रभावों का संक्षेप में चर्चा करें।

.....

.....

.....

## 11.5 जाति-व्यवस्था और उपनिवेशवाद

भारतीय शासन एवं राजनीति संबंधी अध्याय में आपने भारतीय समाज में जाति-व्यवस्था के बारे में पढ़ा होगा। आप इसकी प्रमुख विशेषताओं, इसकी श्रेणीक्रमबद्धता और अवरुद्ध संरचना, जातियों के बीच उपरिगतिकता (mobility) की प्रवृत्ति एवं ढांचे से भी परिचित होंगे। इस इकाई में हम जाति व्यवस्था पर पड़े उपनिवेशवाद के प्रभावों से आपका परिचय करायेंगे।

उपनिवेशवाद द्वारा अपने विकास क्रम में लाए गये परिवर्तनों को देखने से पहले हमें जाति-व्यवस्था की आधारभूत विशेषताओं का संक्षेप में चर्चा करेंगे।

जी.एस. घुर्ये ने जाति संबंधी अपनी आंतरिक पुस्तक में ऐसे छः विशेषताओं का उल्लेख किया है।

अ) समाज का टुकड़ों में, जातीय अर्थ-संप्रभुता और शासकीय निकाय, में विभाजन, जिसके फलस्वरूप जाति विशेष के सदस्य समूचे समुदाय के सदस्य नहीं रहे बल्कि जाति ऐसी समूह बनी रही जिसके सदस्यों को न्याय दिलाने के लिये अलग प्रबंध था। यह तथा ऐसी स्थिति की ओर संकेत करता है जिसके अंतर्गत नागरिक समूचे समुदाय की अपेक्षा अपनी जाति के प्रति नैतिक दायित्व/संबंध को पहला स्थान देते थे।

ब) कर्म कांडों के आधार पर प्रत्येक स्तर पर समाज की सुदृढ़ श्रेणी क्रमबद्धता और प्रत्येक समूह की भूमिका एवं कार्यों की उतनी ही रूढ़ परिभाषा।

स) व्यापक नियमों के अनुसार, जो निश्चित कर देते थे कि किन व्यक्तियों अथवा जातियों से कैसा खान-पान लिया जा सकता है, सहभोज और सामाजिक संसर्ग पर प्रतिबंध।

द) विभिन्न तबकों द्वारा अनुभव किये जाने वाले नागरिक एवं धार्मिक बाध्यताएं और विशेषाधिकार: इनकी अभिव्यक्ति मुख्यत: अलग-अलग आवास क्षेत्रों, किन्हीं सड़कों, इलाकों, मंदिरों में जाने को कुछ जातियों को मनाही, और अस्पृश्यता इत्यादि होती है।

ङ) उद्यम के अप्रतिबंधित/स्वतंत्र चयन का अभाव।

फ) सगोत्र विवाह अथवा वैवाहिक प्रतिबंध।

उपनिवेशवाद ने मुख्यत: दो भिन्न रूपों में जाति-व्यवस्था को प्रभावित किया। एक तो, अंग्रेजों द्वारा प्रवर्तित विधि न्यायिक एवं प्रशासनिक उपागमों के माध्यम से। दूसरे, परोक्ष रूप **if,** भारतीय समाज के उन तबकों पर प्रभाव के माध्यम से, जो उदारवादी विचारों के अधीन सामाजिक सुधारों हेतु संघर्ष के लिए प्रेरित हुए।

### 11.5.1 ब्रिटिश न्यायिक एवं प्रशासनिक व्यवहारों का प्रभाव

विधिसंगत समानता के सिद्धांत पर आधारित अंग्रेजों द्वारा लागू किए गये न्यायिक एवं प्रशासनिक व्यवहारों के अंतर्गत कोई जातिगत विभेद नहीं किया जा गया था। इसके अलावा, अपराध संबंधी समरूप कानून बनाकर उन्होंने "जाति के दायरे से अनेक मसलों को अलग कर दिया, जो पहले इसी के आधार पर तय होते थे।" जाति-निर्धारक निकाय अब बल प्रयोग, व्यभिचार अथवा बलात्कार इत्यादि मामलों पर निर्णय नहीं कर सकते थे। क्रमश: शादी और तलाक जैसे नागरिक कानून संबंधी मसलों में भी जाति का प्राधिकार खत्म होने लगा।

इस प्रक्रिया का दूसरा पहलू था किन्हीं विशेष कानूनों का असली प्रयोग, जिससे जाति का प्राधिकार उनकी दृष्टियों से खत्म तो हुआ, लेकिन व्यवहारतः यह प्रभाव नगण्य सा रहा। इसके बावजूद, विधवा-पुनर्विवाह कानून (1856) अथवा जातीय निर्योग्यता निवारण कानून (1850) जैसे कानूनों का जातीय प्राधिकरण पर विचारणीय प्रभाव पड़ा। विवाह के संबंध में अंग्रेजी विधि-विधान में स्थानीय परंपराओं से निश्चित व्यवहारों को ही मान्यता दी गई।

अंग्रेज़ी प्रशासन ने निचली जातियों की नागरिक समानता के सवाल को उठाया। उदाहरण के लिए, बंबई प्रेसिडेंसी सरकार ने 1923 में पारित अपने प्रस्ताव में ऐसे सभी स्कूलों, शैक्षिक संस्थाओं का अनुदान रोक लेने की धमकी दी जो निचली जातियों के छात्रों को प्रवेश देने से इनकार करते थे। निचली जाति के छात्रों की कक्षाओं में अलग बैठने की प्रथा थी, क्रमशः खत्म कर दी गई और उनको सवर्ण हिंदू विद्यार्थियों के साथ ही बैठने की अनुमति मिल गई। मद्रास सरकार ने 1923 में निचली जातियों को सताने वालों को दंड देने का अधिकार मजिस्ट्रेट्स/मजिस्टरों को दिया और 1925 में एक विशेष अधिनियम के अंतर्गत सार्वजनिक सड़कों, गलियों, सार्वजनिक कार्यालयों, कुओं, जलाशयों इत्यादि को दलितों समेत सबके लिए खोल दिया।

दरअसल, मद्रास प्रेसीडेंसी की सरकार ने ही पहली बार बहुत पहले 1873 में ही निचली जातियों को नौकरियों के लिए विशेष संरक्षणात्मक कानून बनाये थे।

## 11.5.2 आर्थिक परिवर्तनों का प्रभाव

पहले अनुभाग में हमने उल्लेख किया है कि अंग्रेजी शासन की स्थापना ने भारतीय अर्थतंत्र को किस प्रकार प्रभावित किया। आप यह देख चुके हैं कि कृषि कर्म के प्रसार के साथ, किस प्रकार बदलते हुए आर्थिक ढांचे ने घुमक्कड़ जन समुदाय को जाति संरचना में समायोजित कर लिया। इसने जाति श्रेणीक्रम में किन्हीं जाति समूहों के स्तर में भी परिवर्तन किया क्योंकि भूमि एक जिंस बन चुकी थी जो किसी को, निम्नजाति के सदस्यों को भी, बेची जा सकती थी जो उसके लिए भुगतान करने की स्थिति में थे। इससे अनेक व्यक्तियों को एक विशेष आर्थिक स्तर प्राप्त करने का अवसर मिला, जिसके माध्यम से वे ऊपर उठने के लिए क्रमशः प्रयास कर सकते थे। तटीय नगरों एवं राजधानियों में नये आर्थिक अवसरों की सुलभता और निचली जातियों के लिए भी व्यापार एवं नौकरी की सुविधा के फलस्वरूप वे सापेक्षिक समृद्धता की स्थिति में आ गये। उदाहरण के लिये, सुधरे हुए संचार साधनों के कारण तेल और बिनौलों का बाजार बड़ा बन गया, जिससे समूचे पूर्वी भारत के तेलियों को लाभ हुआ। पूर्वी उत्तर प्रदेश के नोनियों, सूरत के तटीय क्षेत्रों के कोलियों तथा उन जैसे/अन्य अनेक समूहों को रेलवे, सड़क और नहर निर्माण कार्य के फलस्वरूप नौकरी के नये अवसरों का लाभ मिला। इन स्थितियों में, एम.एन. श्रीनिवास के अनुसार, धनी परिवारों और तबकों में ऊंची जातियों के प्रतीक कार्मकांड अपनाकर जाति श्रेणीक्रम में उठने की आकांक्षा घर कर गई। यह उपरि-गतिकता (upward mobility) की प्रक्रिया ही 'संस्कृतिकरण' के नाम से जानी जाती है। कृषि अर्थतंत्र से औद्योगिक अर्थतंत्र की दिशा में परिवर्तनों ने अपने क्रम में पश्चिमीकरण का प्रक्रिया को जन्म दिया, जिसका आशय था पाश्चात्य मूल्यों को अपनाकर अपना सामाजिक स्तर बदलने का प्रयास।

## 11.5.3 उदारवादी दर्शन के प्रभावों के अधीन जाति-विरोधी आंदोलन

तीसरा महत्वपूर्ण कारण जिसने जाति-व्यवस्था को प्रभावित किया यह था समूचे उत्तर भारत में आर्य समाज, बंगाल में राजा राममोहन राय, महाराष्ट्र में ज्योतिबा फुले, केरल में श्री नारायण गुरु, मद्रास में रामास्वामी नायकर इत्यादि द्वारा चलाये गये सशक्त जाति-विरोधी एवं समाज सुधार आंदोलन। इन आंदोलनों द्वारा उठाये गये केंद्रीय विषय थे। महिलाओं का स्थिति में सुधार, उत्पीड़ित जातियों के लिए सामानाधिकार, धर्म एवं कर्मकांडों में संबंधित सामान्य सुधार। उदाहरण के लिए, समाज सुधारकों के पर्याप्त दबाव के फलस्वरूप ही 1872 का स्पेशल मैरेज ऐक्ट (विशेष विवाह अधिनियम) व्यवहार में आया, जिसने अंतरजातीय विवाह संभव बनाया।

समाज सुधारकों द्वारा, विशेषकर बंगाल में, चलाये गये संघर्ष के महत्वपूर्ण मुद्दे थे विधवा-पुनर्विवाह, सती प्रथा का विशेष, महिला-शिक्षा इत्यादि। किन्हीं निचली जातियों की गतिशीलता ने, श्री निवास के अनुसार, क्षेत्र की अन्य जातियों पर "आदर्श प्रभाव" छोड़ा। वे अब यह अनुभव करने लगे कि निर्धनता और उत्पीड़न का जीवन जीने के लिये वे अभिशप्त

नहीं है। सामाजिक श्रेणियों में वे भी ऊपर आ सकते थे, बशर्ते वे इसके लिए, प्रयास करें। इस अनुभूति ने निचली और पिछड़ी जातियों के आंदोलन को और मजबूत बनाने में महत्वपूर्ण योगदान किया। जिसे बाद में पिछड़े वर्गों के आंदोलन के रूप में जाना गया, उसकी व्यापक प्रकृति थी और यह आंदोलन भारत के दक्षिणी भागों में विशेष रूप से, प्रबल था। ये आंदोलन दो मंजिलों से गुजरे: पहली मंजिल पर निचली जातियों ने उच्च स्तरों के प्रतीक एवं कर्मकांड अपनाने का प्रयास किया और दूसरी पर, उनकी आकांक्षाएं राजनीतिक सत्ता, शिक्षा और अवसरों में अपना हिस्सा पाने की दिशा में बढ़ी।

जातीय सभाओं के उभार से पिछड़ी जातियों के आंदोलनों को संगठनिक उत्प्रेरण मिला। इन सभाओं के आरंभिक क्रियाकलाप जातीय रीति रिवाजों/प्रथाओं के सुधार और सजातीयों के हित में छात्रावास-निर्माण, सहकारी आवास-व्यवस्था, कालेजों-अस्पतालों की स्थापना, और छात्रवृत्तियां देने जैसे कल्याणकारी कार्यों को लक्षित थे।

उपरोक्त अत्यंत महत्वपूर्ण जाति विरोधी आंदोलनों का विहंगम अवलोकन यह संकेत देता है कि दृष्टिकोण एवं विधि में विविधता के बावजूद उनका एक सामान्य आधार इस अर्थ में था कि वे सभी सुधार प्रयासों का समग्र बिंदु बन चुके एक जैसे मुद्दों से प्रेरित थे। जबकि बंगाल के समाज सुधारकों ने राष्ट्रवाद का समर्थन करते हुए जातिवादी उत्पीड़न के आधार को ही स्पष्ट चुनौती दी, आर्य समाज और रामकृष्ण मिशन ने जाति-व्यवस्था में सुधार की ही बात की। फुले और नायकर ने सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में उच्च जातियों के प्रभुत्व पर प्रहार के लिए "निचली जातियों" को संगठित किया। बहरहाल, हम यह संकेत दे चुके हैं कि उच्च जातियों के प्रभुत्व के विरुद्ध निचली जातियों को संगठित करने वाले ऐसे आंदोलन कालक्रम में स्वयं ही जातीय एकजुटता आंदोलन में बदल गये।

**बोध प्रश्न 3**

**टिप्पणी** : 1) नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग करें।

2) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये उत्तर से करें।

1) वे दो मुख्य तरीकें क्या थे जिनसे उपनिवेशवाद ने जाति-व्यवस्था को प्रभावित किया?

.....

.....

.....

.....

.....

## 11.6 आदिवासी आंदोलन

**यह ध्यान देने की बात है कि उपनिवेशकालीन भारत में आदिवासी आंदोलन, अंग्रेजी शासन की उन सामाजिक-आर्थिक नीतियों के प्रति गहरे असंतोष और क्षोभ से उभरा था, जो उनके जीवन को बुरी तरह प्रभावित कर रहीं थीं। सरकार के समर्थन से महाजनों द्वारा आदिवासियों की जमीन पर कब्जे का सवाल हो, आदिवासी जंगलों के अधिग्रहण की बात हो अथवा अत्यधिक करों और लगान-वृद्धि की समस्या हो, प्रत्येक ऐसी नीति ने आदिवासियों एवं घुमक्कड़ समुदायों में अधिकारियों के प्रति गहरा अविश्वास पैदा किया और उन्हें शासकों के विरुद्ध कर दिया– आम तौर पर बाहर से आने वाले सूद/हिकू के खिलाफ, क्योंकि आदिवासी के मन में स्थितियों का बोध ऐसा ही था।**

**स्थिति इस तथ्य के कारण और बुरी हो गई कि उन्नसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में पड़े अकालों ने आदिवासियों को भुखमरी की स्थिति में ठेल दिया। डा. वरनियर एल्विन की टिप्पणी के अनुसार आदिवासी समुदायों के पतन की मुख्य कारण था "भूमि तथा जंगलों की क्षति" जिसने आदिवासी समाज तंत्र पर घातक प्रभाव छोड़ा, क्योंकि अनेकानेक अन्य महामारियों के संक्रमण के विरुद्ध उनकी आंतरिक प्रतिरोध क्षमता बनी नहीं रह गई थी। "यदि हम भारत के अन्य आदिवासी बहुल क्षेत्रों में अधिकारियों के विरुद्ध आदिवासी विद्रोहों की सुदीर्घ शृंखला पर नजर डालें तो पायेंगे कि उनमें से अधिकांश उपरोक्त एक कारण से उपजे थे। 1833 के**

कोल जन उभार का कारण आदिवासी भूमि स्वामित्व का उल्लंघन था। 1789 और 1832 के बीच सात बार चला तमार विद्रोह भूमि संबंधी अधिकारों से अवैध रूप में वंचित कर दिये जाने के कारण ही था, जैसा कि होस (HOS) मुंडा और ओरांव अपने साथ पा रहे थे। 1855 का संथाल विद्रोह जमींदारों, महाजनों इत्यादि द्वारा उत्पीड़न के विरुद्ध विद्रोह था। 1895-1901 का बिरसा मुंडा विद्रोह भी 'बाहर से आने वालों' –जमींदारों, व्यापारियों और सरकारी अधिकारियों के विरुद्ध चलाया गया था। स्पष्टतः ये आंदोलन देश के व्यापक हिस्सों में फैले हुए थे।

विभिन्न स्थानों और समयों में हुए इन आदिवासी आंदोलनों की महत्वपूर्ण विशेषता यही थी कि वे इक्का-दुक्का सीमित क्षेत्रों में ही घटित नहीं हुए, बल्कि समूचे देश में फैले हुए थे और उनके मूल में एक जैसी समस्याएं थीं। बीसवीं सदी के आरंभ में महत्वपूर्ण आदिवासी आंदोलन घटित होते हम पाते हैं। उनमें सर्वाधिक प्रमुख वर्तमान आंध्र प्रदेश में हुआ जहां आदिवासियों का आंदोलन गांधी के असहयोग आंदोलन से जुड़ गया और वापस लिए जाने के बाद भी सीताराम राजू के नेतृत्व में आगे चलाया गया। सुमित सरकार के अनुसार आंदोलन का प्रसार आंध्र के क्षेत्रों से बहुत दूर तक था।" 10 जुलाई 1921 को रोडिंग ने राज-सचिव को सूचना दी कि उ.प्र. के कुमाऊं क्षेत्र के चार लाख एकड़ में से ढाई लाख एकड़ स्थित जंगलों को जला दिया गया था। दिसंबर 1921 में चरागाह क्षेत्रों से संबंधित आंदोलन से निपटने के लिए उत्तरी बिहार के मुजफ्फरपुर क्षेत्र में घुड़सवार सैनिक भेजने पड़े। बंगाल से भी सूचनाएं मिलीं कि मिदनापुर के झाड़ग्राम क्षेत्र में संथाल अपनी खोई हुई वन संपदा पर पुनः अधिकार जता रहे थे और चिटगांव के कपास बाजार क्षेत्र और बांसखाली के वनों में व्यापक लूट की कार्यवाइयां हुई।"

ऐसे अनेक आदिवासी आंदोलनों का अध्ययन रोचक विशेषताएं सामने रखता है, जिसका समतुल्य हम विश्व के अन्य भागों में कृषि-आंदोलनों में पाते हैं। इसमें से अधिकांश की एक चारित्रिक विशेषता है, जिसे रणजीत गुहा ने 'नकारात्मक चेतना' की संज्ञा दी है। एक समुदाय अथवा वर्ग के रूप में अपनी चेतना ही नहीं, बल्कि शत्रु पक्ष के अभिज्ञान पर आधारित चेतना इस प्रक्रिया में केन्द्रीय भूमिका निभाती है।

जनता के शत्रुओं का अभिज्ञान अक्सर विश्वास युक्तों, उत्पीड़ितों और मताधिकारवंचितों के शत्रुओं के रूप में किया जाता है और ऐसे शत्रुओं के विरुद्ध संघर्ष का धर्मसम्मत आह्वान किया जाता है।

दैवी हस्तक्षेप से धरती पर स्वर्ग की स्थापना का संदेश यहूदी, ईसाई और शिया-मुस्लिम धर्म की शिक्षाओं का अभिन्न अंग रहा है। इस को मसीहावाद, सहस्त्राब्दिवाद, महदीवाद इत्यादि विविध संज्ञाएं दी गई हैं। ऐसे सहस्त्राब्दिवादी तत्व मध्य 19वीं सदी ईरान के विभिन्न महदी आंदोलनों, चीन के ताईपिंग विद्रोह में अभिव्यक्त "स्वर्गिक साम्राज्य" संबंधी दृष्टिकोण अथवा ब्राज़ील के विविध आंदोलनों में देखे जा सकते हैं।

77 कृषक-विद्रोहों के अध्ययन के आधार पर कैथलीन गफ ने उनका वर्गीकरण लक्ष्य, विचारधारा एवं संगठन विधि के अनुसार 5 प्रकारों में किया है। 1) अंग्रेज़ों को बाहर निकालने और पूर्ववर्ती शासकों एवं सामाजिक संबंधों की वापसी के लिए हुए पुनर्स्थापना विद्रोह, 2) एक नई सरकार के अधीन क्षेत्र विशेष अथवा आदिमगन समूह की मुक्ति के लिए हुए धार्मिक आंदोलन, 3) इ.जे. हाब्सबाम द्वारा उल्लिखित "सोशल बैंडिटरी", 4) सामूहिक न्यायसिद्धि के विचार से की गई बदले की आतंकवादी कारवाईयां और 5) समस्या विशेष को सुलझाने के लिए व्यापक जनउभार।

एरिक हाब्सबाम, नार्मन कॉन और पीटर वोर्स्ली के अनुसार भारत में सहस्त्राब्दिक आंदोलन नगण्य अथक बिल्कुल नहीं थे, क्योंकि आमधारणा के अनुसार ऐसे आंदोलन ईसाई प्रभावों से ही उभरते हैं। गफ की धारणा इससे बिल्कुल भिन्न है। उनके अनुसार, हजार वर्षों की अवधि के अंतर्गत बुराइयों पर विजय में सहज विश्वास मात्र के रूप में यह शायद सच है, यद्यपि व्यापक अर्थों में नहीं। यह विश्वास और प्रत्याशा कि दैवी हस्तक्षेप से वर्तमान दुराचारग्रस्त विश्व का रूपांतरण हो जायेगा, और धरती पर सुख का साम्राज्य होगा, भारत के अनेक आदिवासी आंदोलनों में गहरे पैठ रही है। "बिरसा मुंडा ने लूथर समर्थक मिशनरियों एवं हिंदू संन्यासियों, दोनों से ही शिक्षाएं प्राप्त की और उपरोक्त दोनों धर्मों के विश्वासों एवं प्रतिरूपों को सहेजे हुए अपनी मुंडा आस्थाओं की ओर वापस मुड़ा। पहले उसने मुंडा आदिवासियों में प्रचरित किया कि वह विदेशी शासन से मुक्त करने के लिए आया

दैवी संदेशवाहक है और फिर स्वयं को ईश्वर का अवतार घोषित कर दिया। उसका लक्ष्य था पहाड़ की चोटी पर ले जाकर संभावित जल प्लावन, अग्निवर्षा और गंधकाश्म से होने वाले विनाश से विश्वासशील आदिवासियों की रक्षा करना। उनके नीचे "सारे अंग्रेज़, हिंदू और मुसलमान खत्म हो जायेंगे, जिसके बाद मुंडा साम्राज्य अस्तित्व में आएगा।"

इनमें से कुछ आंदोलन परवर्ती काल में राष्ट्रीय आंदोलन की धारा से जुड़ गये। विशेषकर असहयोग आंदोलन की अवधि में "वन सत्याग्रहों" ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। क्रमशः उनमें साम्राज्यवादी विरोधी विचारधारा का भी संचार हुआ। सुमित सरकार के अनुसार, "सीताराम राजू के आंदोलन में कुछ नई विलक्षण विशेषताएं सामने आईं थीं। सीताराम राजू पूर्ववर्त्ती नेताओं की तरह गांव का स्थानीय मुत्तादार (Muttadar) नहीं था, बल्कि पारिवारिक चिंता एवं स्वार्थ से परे एक व्यक्ति था। एक बाहरी व्यक्ति के रूप में वह ऐसे समूह से आया था जो अपने क्षत्रिय पद और तेलुगु भाषा में दक्षता एवं संस्कृत-ज्ञान का दावा करता था।"

साम्राज्यवाद-विरोधी विचारधारा अभी अपने अंकुरण काल में थी। राजू की साम्राज्यवाद-विरोधी भावनाओं की प्रतिछवि उसके इस वक्तव्य में मिलती है कि वह यूरोपवासियों पर गोली चलाने में स्वयं को असमर्थ पाता था क्योंकि वे हमेशा भारतीयों से घिरे रहते थे जिनको मारना वह नहीं चाहता था।

इस विचारधारा के साथ आदिम मसीहाई तत्व जुड़े हुए थे। 1918 से ही वह ज्योतिष शास्त्र एवं चिकित्सा संबंधी अपनी शक्तियों के दावों के साथ आदिवासी क्षेत्रों में सक्रिय था और 1921 में असहयोग आंदोलन के प्रभाव में आया। मलकानगंज के डिप्टी तहसलीदार की सूचना के अनुसार, "राजू का दावा था कि गोली का उस पर कोई असर नहीं पड़ेगा।" अप्रैल 1924 में की गई विद्रोहियों की एक घोषणा के अनुसार, "भगवान जगन्नाथ स्वामी शीघ्र ही कल्कि रूप में अवतरित होंगे और हमारे सामने आयेंगे।"

सारतः ये सभी आदिवासी आंदोलन उनकी दुर्दशा के लिए जिम्मेदार अंग्रेज-साम्राज्यवादी नीतियों के विरुद्ध गहरे क्षोभ और असंतोष से उभरे थे। यह आप इस इकाई के आरंभ में देख चुके हैं।

**बोध प्रश्न 4**

**टिप्पणी** : 1) अपने उत्तर के लिए नीचे दिये रिक्त स्थान का प्रयोग करें।
2) अपने उत्तर की जांच इकाई के अंत में दिये गये उत्तर से करें।

1) उपनिवेशकालीन भारत में उभरे आदिवासी आंदोलन का विवेचन कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

.....

## 11.7 सारांश

**इस इकाई में आपने जाति-व्यवस्था और विविध आदिवासी आंदोलनों के विशेष संदर्भ के साथ, भारत में अंग्रेजी उपनिवेशवाद के प्रभावों का अध्ययन किया है। आपको बताया गया है कि औपनिवेशिक शासन के क्रम में किस प्रकार कुछ शक्तियों और आंदोलनों का उदय हुआ जो जाति-व्यवस्था की कट्टरता खत्म करने में सहायक बने। इस अवधि में उभरने वाले अनेक उपनिवेशवाद-विरोधी आदिवासी आंदोलनों के उद्भव एवं विकास के बारे में भी आपने पढ़ा। यह आशा की जाती है कि इस इकाई के अध्ययन से वर्तमान भारतीय समाज के रूपांतरण के लिए किये जा रहे विविध प्रयासों में एक उपयोगी अंतर्दृष्टि आपको मिलेगी।**

## 11.8 बोध प्रश्नों के उत्तर

**बोध प्रश्न 1**
देखें, अनुभाग 11.2

**बोध प्रश्न 2**
देखें, अनुभाग 11.4

**बोध प्रश्न 3**
देखें, अनुभाग 11.5

**बोध प्रश्न 4**
देखें, अनुभाग 11.6